EDUZONE: International Peer Reviewed/Refereed Multidisciplinary Journal (EIPRMJ), ISSN: 2319-5045
Volume 8, Issue 2, July-December, 2019, Impact Factor: 5.679, Available online at: www.eduzonejournal.com

ऋग्वेदीय मंत्रों में दार्शनिकता

Joginder Singh

Assistant Professor, Govt College, Hansi

भारतीय चिन्तन परम्परा में देवभावना का सूत्रपात ऋग्वेद से आरंभ होता है। वेदों में वर्णित विभिन्न देवों में कुछ देवों का जगत की सृष्टि से सीधा संबंध है। ऐसे देवों में धाता, त्वष्टा, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ तथा प्रजापति इत्यादि। धाता, सूर्य, चन्द्र, धुलोक, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष का निर्माता है। इसी प्रकार त्वष्टा, जगत के समस्त प्राणियों को रूप सम्पन्न करने वाला है। ऋग्वेद के दो सम्पूर्ण सूक्तो में विश्वकर्मा की प्रशस्ति हैं।[1] और उन्हें सब और नेत्र, मुख, भुजाओं और चरणों वाला माना गया है। शतपथ–ब्राह्मण में विश्वकर्मा को प्रजापति से अभिन्न स्वीकार किया गया है।[2] प्रजापतिर्दै विश्वकर्मा। ऋग्वेद के अनुसार हिरण्यगर्भ भूतजात का एक मात्र पति तथा पृथिवी एवं घुलोक को धारण करने वाला है। तैत्तिरीय–संहिता में हिरण्यगर्भ को प्रजापति से अभिन्न माना गया है।[3] प्रजापति का प्रजा की उत्पत्ति के लिए पृथक रूप से अभिहित किया गया है।

आ नः प्रजा जनयतु प्रजापतिः[4]

ऋग्वेद में 'क' के रूप में भी प्रजापति का ही संकेत है।[5] शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय संहिता में भी 'क' प्रजापति ही माना गया है।

ऋग्वेद में बहुदेववाद की प्रवृत्ति एकदेववाद की ओर प्रेरित होती है। अग्नि के विषय में एक ऋषि कहता है – ''हे अग्निां! जब तुम उत्पन्न होती हो तो वरूण हो, समिद्ध होने पर तुम मित्र हो, हे शक्ति के पुत्र! तुममें सब देवता आहित है, तुम हवि देने वाले उपासक के लिए इन्द्र हों! द्वितीय मण्डल के प्रथम सुक्त में अग्नि का संबंध द्यो, इन्द्र, वरूण, विष्णु, ब्रह्मा, ब्रह्मणस्पति, मित्र, अर्यमा, त्वष्टा, रूद्र, भग, आदि अनेक देवों के साथ तादात्म्य स्थापित किया गया है। यास्क द्वारा उदधृत एक ब्राह्मण यधनानुसार भी अग्नि ही सब देवता है – ''अग्निः सर्वाः देवताः।[6] अनेक देवों में एक ही दिव्य सत्ता का अनुभव करने की प्रवृत्ति निरन्तर विकसित होती चली गई और वैदिक ऋषियों की यह धारणा दृढ़ हो गई कि वस्तुत. सत एक ही है, अन्य सभी उसी के विभिन्न नाम एवं रूप है। दीर्घतमा का कथन है–'' लोग उसे इन्द्र, मित्र, वरूण, एवं अग्नि कहते हैं। तथा यह दिव्य सुपर्ण गरुत्मान है. विप्र उस एक ही सत का वर्णन बहुत प्रकार से करते हैं, ये उस अकेले को ही अग्नि, यम। तथा मातरिश्वा भी कहते हैं। इन्द्रं मित्रं वरूणमग्नि माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एक सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वान माहु[7] इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि विप्र कवि लोग एक ही सुपर्ण को अपनी याणियों द्वारा बहधा कल्पित करने है– सुपर्ण विप्राः कवयों वथोभिरेक सन्त बहुधा कल्पयन्ति।'' परमतत्व की अभिव्यक्ति अदिति, विश्वकर्मा प्रजापति, हिरण्यगर्भ तथा पुरुष आदि नामों से हुई। 'पुरूष–सुक्त' में पुरूष को ही भूत तथा भव्य सभी कुछ माना गयाहै – ''पुरूष एवेदं सर्व यद भूतं यच्च भव्यम्'[9] 'पुरुष' शब्द से एकत्व की अनुभूति कठोपनिषद तथातथा श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में भी कराई गई है। यह औपनिषद् ब्रह्म धारणा के समान ही है'' – सर्व खल्विदं ब्रह्म' अर्थात सब कुछ निश्चय ही ब्रह्म ही है। आचार्य यास्क ने भी कहा है कि देवता के महाभाग्यशाली होने के कारण एक ही आत्मा की स्तुति बहुधा की जाती है, अन्य दव एक आत्मा के भिन्न–भिन्न रूप हैं।

''महाभाग्याद देवताया एक आत्मा बहुधा स्तुयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति ।।''[11]

ऋग्वेद के ऋषियों की इन भावनाओं में स्पष्टतः एकत्यवाद अथवा उपनिषदों में प्रतिपादित अद्वैतवाद के दर्शन होते हैं।

ऋग्वेद' के विशेषतः नासदीय–सुक्त (10/129) विश्वकर्मा–सुक्त तथा हिरण्यगर्भ–सुक्त (10/121) में सृष्टि विषयक विचारों की प्राप्ति होती है। नासदीय–सुक्त में सृष्टि से पूर्व की अवस्था में अत्–असत. मृत्यु एवम् अमृत का निषेधकर तम से गूढ महान्तम बताकर आदितत्व के रूप में सर्वत्र प्रकेतरहित जल की सत्ता स्वीकार की गई है।''[13] तैत्तिरीय–संहिता तथा वृहदारण्य को पनिषद में भी जल ही आदितत्व के रूप में माना है। विश्वकर्म–सुक्त के अनुसार सृष्टि से पूर्व जलों ने विश्वकर्मा ही को गर्भ रूप में धारण किया।

''तमिद् गर्भ प्रथम द्रध आप''[14]

अग्नि द्वारा जलों में गर्भ उत्पन्न हुआ। एक स्थान पर सृष्टि के आदि में मन का प्रथम बीज काम अर्थात् सिसृक्षा मानी गई है। ''कामस्तदग्रे समवर्तवाधि मनसों रेतः प्रथम यदासीत।''[15] एक मंत्र में असत् से सत की उत्पत्ति का वर्णन है। पुरूष सुक्त में पुरूष की हवि द्वारा सर्ग रचना का वर्णन है। अयन्त्र ब्रह्मा द्वारा तपे गये तप से ऋत एवं सत्य, उसके बाद रात्रि. समुद्र, संवत्सर,

अहोरात्र, सूर्य, चन्द्र, प्रथिवी, धुलोक तथा अन्तरिक्ष की उत्पत्ति बताई गई है।[16] अन्य प्रक्रिया के अनुसार जलों से अग्नि, अग्नि से गर्भ. अर्थात (हिरायगर्भ अथवा प्रजापति) तथा प्राण आदि की सृष्टि हुई है।

आपो ह यद् बृहत्तीविश्वमायन गर्भ दधानाजनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्तसतारेक करमै देवाय इविधाविधेम।''[17]

इस प्रकार ऋग्वेद में अनेक सृष्टि विषयक सिद्धान्तों के संकेत मिलते हैं। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर संसार को वृक्षरूप माना गया है। यह कठोपनिषद के सनातन अश्वत्थ–वृक्ष से अभिन्न है। जिसका मूल ऊपर और शाखाएं नीचे हैं। श्रीमदभगवदगीता का अव्यय अश्वत्थ भी यही है। ऋग्वेद में आत्मतत्व का निर्देश किसी एक निश्चित शब्द द्वारा नहीं। किया गया है। अपित् आत्मन जीव तथा मैक्डॉनल आदि कछ विद्वानों के मत में असु, प्राण, एवम् मनस् शब्दों द्वारा उसका संकेत किया गया है। 'आत्मन' शब्द ऋग्वेद में देह, श्वांस. चौतन्य, सारतत्त्व आदि विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त है। यह शब्द पार्थिव शरीर से पृथक चेतन–सत्ता के अर्थ में भी आया है। और सायण ने इसका अर्थ चेतन सत्ता किया है।'' तैः । सम्बद्धश्वचेतनः।'' यह शब्द आनंददायी तत्त्व के रूप में प्रयुक्त है। अग्निदेव से आत्मा की भांति आनंददायी एवं सर्वधारक होने की प्रार्थना की गयी है।

आत्मेव शेवो विधिषाय्यो भूत् ।'[18]
सायण इस पर भाष्य करते हैं।
''आत्मेव परमप्रेमास्पदतया
निरतिशयानन्दस्वरूपः आत्मा यथा सर्वान सुखयति।[19]

बाद में यह शब्द परमतत्त्व का वाची बन गया। 'आत्मन्' शब्द से परमतत्त्व का सर्वप्रथम प्रयोग अथर्ववेद के ब्रह्मसुक्त में हुआ है।

अकामों धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः
तमेव विद्वान्न विभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम।[20]

कुछ स्थलों पर सायण ने जीव शब्द का प्रयोग जीवात्मा के अर्थ में स्वीकार किया है। ऋग्वेद में प्राण को जीवनतत्व के रूप में माना गया है। जो आरण्यकों एवम् उपनिषदों में विकसित प्राणविद्या की भूमिका है। ऐसा ही प्रयोग असु शब्द का भी है। शतपथ–ब्राह्मण के अनुसार प्राण तथा असु एकरूप है –''प्राण वाडसुः । ऋग्वेद में मनस् शब्द आत्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

उदाहरण के लिए एक स्थल पर यमलोक, स्वर्ग, पृथिवी, दिशाएं, आकाश, समुद्र, औषधियां, सूर्य, उषा, पर्वत आदि स्थानों में गए हुए मृतक के मन को लौटाने का वर्णन है। इस प्रसंग में मन आत्मा ही प्रतीत होता है। कदाचित् इसी कारण ग्रिफिथ तथा म्यूर आदि विद्वानों ने यहाँ मन को आत्मा के अर्थ में माना है। छान्दोग्योपनिषद् में भी मन को आत्मा के अर्थ में माना है। छान्दोग्योपनिषद में भी मन को आत्मा तथा ब्रह्म माना है।

''मनो आत्मा मनो ही ब्रह्म।"[21]

कदाचित ऋग्वेद में 'ब्रह्म शब्द से निर्दिष्ट स्त्रोतशक्ति में चौतन्य शक्ति एवं परमतत्व के रूप में मान्य परवर्ती ब्रह्म का मूल खोजा जा सकता है। ऋग्वेद में परमतत्व के अभिधायक अन्यपद भी प्रयुक्त मिलते है। अजोभागः (10.16.4), सुपर्णः (10.114.4), वाक (10. 125), एकसत (1.164:46), तदेकम् (10.129.2), परमपदम (1222021), अभयं ज्योति (2.27.11,14) आदि।

ऋग्वेद में परलोक, कर्म एवं पुनर्जन्म आदि से संबंद्ध विचारों की भी आभव्यक्ति र है। ऋग्वेद में देवों के साथ–साथ पितरों का आहान तथा उनसे रक्षा की प्रार्थना का गया है।'' अंगिरा, नवग्व, अथर्वा एवं भृग नामक पितरों का वर्णन, पितरों द्वारा आकाश का नक्षत्रा द्वारा अलंकृत करने, उनके द्वारा सोमपान एवं हविर्यहण और देवयान के साथ–साथ पितृयाण (10/88/15) का उल्लेख भी है।

एक सम्पूर्ण सुक्त पितरों को संबोधित है। यम विषयक सुक्तों (10.10.14.137.154) तथा अन्यान्य मंत्रों से ऋग्वैदिक मानव की भावी जीवन विषयक धारणाओं का परिचय मिलता है। तदनुसार यम ने सर्वप्रथम भूलोक से ऊपर जाकर एक नवीन लोक का अन्वेषण । किया ओर लोगों के लिए उसका मार्ग खोजा। वे उस लोक में मनुष्यों को एकत्र करते हैं। इस मार्ग पर पूर्व पितर भी चले थे।[23] यम विवस्वान के पुत्र एवं मृतकों के राजा हैं। उनका निवास स्वर्ग के गुह्यस्थान में हैं, जहाँ अभिनव सलिल प्रवाहित रहते हैं।[24] मृतक यमलोक में यम के साथ आनंदपूर्वक निवास करने वाले पितरों से जाकर संयुक्त हो जाते हैं।[25] यम के चार आँखों वाले, शवल, चौड़ी नाक वाले. पथ के रक्षक, सरमा के पुत्र दो दूतरूप कुत्तों का भी वर्णन है।[26] जिन्हें मृतक को सौंपने और कल्याण एवं नैरोग्य प्रदान करने की बात भी की गई है।[27] उल्लू तथा कपोत पक्षी भी कहीं–कहीं यम के दूत माने गये हैं। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि ऋग्वैदिकालीन लोगों की यह धारणा थी कि जीव मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहता है और यमलोग में जाता है। एक स्थल पर परलोक में शरीर प्राप्ति का भी संकेत दिया है। मृतक से उत्तम दीप्तियुक्त शरीर के साथ संगत होने के लिए कहा गया है –

''हित्वायावचं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः।"[29]

अग्नि से भी प्रार्थना की गई है कि मृतक शेष आयु को धारण करता हुआ शरीर के साथ संगत हो जाए। ऋग्वेद में तीन स्वर्गों का उल्लेख है। रश्मियों से भूरि अवभासित, मधु के उत्स से युक्त, धुलोक में विद्यमान विष्णु का परमपद, तो बाद में बैकुण्ठ, गोलोक तथा मोक्षरूप परमपद के रूप में मान्य हो गया।

तदस्य प्रियममि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरूक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।।
ता दा वास्तून्युश्मसि वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि।।[31]

दुष्कर्मों के भोग स्थान नरक का उल्लेख ऋग्वेद के खिलकाण्ड में मिलता है। और इसका वर्णन अथर्ववेद में भी मिलता है।

ऋग्वेद में कर्म संबंधी मान्यताओं का भी उल्लेख है। लोगों का सुकृत के शुभ फल आर दुष्कृत के अशुभ फल में विश्वास था। सकतों को कल्याणकारी माना गया है। एक मंत्र में मृतक से इष्टापूर्व द्वारा परमव्योग में पितरों तथा यम से संयुक्त होने के लिए कहा गया है।[33] दुष्कर्मियों की निदा की गई है। अंगिरा एक मंत्र में स्पष्ट कहते हैं कि दुष्कृत व्यक्ति ऋत के पथ को पार नहीं कर सकते हैं।

इन्द्राणी दुष्कृत के लिए सुखदात्री नहीं होती और पर्जन्य दुष्कृतों का वध करते है। लोगों की धारणा थी कि कृत कर्म नष्ट नहीं होते – ''न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि''[34] इन्द्र एक मंत्र में कहते हैं कि भूतकाल के लिए किए गये तथा भविष्य में किए जाने वाले कर्मो द्वारा लोग मुझे ही प्राप्त करते हैं।[35] वरूण समस्त आश्चर्यजनक कार्यों को देखते हैं, जो किए जा चुके हैं और जो भविष्य में किये जायेगे। यहाँ हमें संचित एवं प्रारब्ध कर्मों के संकेत मिल जाते हैं।

ऋग्वेद में पुनर्जन्म संबंधी विचारों का भी उल्लेख हुआ है। सुबन्धु के देह से। इन्द्रियवर्ग सहित निकले हुए मन (अर्थात् आत्मा) को पुनः इस लोक में निवास एवं चिरजीवन हेतु लौटाने की बात की गई है।[36] ऋषि वामदेव मनु तथा सूर्य आदि के रूप में अपने अनेक पूर्वजन्मों की चर्चा करते हैं।[37] इन संदर्भो से पुनर्जन्म विषयक धारणा की पुष्टि होती है।

ऋग्वेद के मंत्रों में जरा–मरण बन्धन रूप संसार से मोक्ष प्राप्ति की कामना की भी झलक मिलती है। एक मंत्र में शुनः शेप वरूण से निऋति को पराङमुख करने तथा पाप को हटाने की प्रार्थना करता है।[38] इसी प्रकार गृत्समद वरूण से अपने आपको रस्सी को खोलकर मुक्त किये गए बछड़े की भांति पापबंधन से मुक्त करने करने का निवेदन करते हैं।[39] ऋग्वेद में मृत्युबंधन से मुक्ति पाने की भावना के दर्शन होते हैं। एक मंत्र में एक ऋषि त्रयम्बक से प्रार्थना करता है कि मैं खरबूजे की भांति मृत्यु के बंधन से छूट जाऊँ, अमृत से नहीं है।

''उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात''[40]

एक मंत्र में इन्द्र अपने विषय में कहते हैं कि मैं कभी भी मृत्यु के लिए प्रस्तुत नहीं हुआ।'' न मृत्यवेऽतस्ये कदा चन[41] ऋग्वेद में अमृतत्व की प्राप्ति की कामना भी अभिव्यक्त हुई है। एक मंत्र में सोमदेवता से प्रार्थना की गई है कि मुझे उस अमृतमय लोक में अमृतमय बना दो जहाँ शाश्वत प्रकाश है, सुख है, जहाँ लोक ज्योतिष्मान है। और जहाँ आनंद ही आनंद है।[42] उपनिषदकालीन अमृतत्व एवं मोक्ष का विकास ऐसे ही ऋग्वैदिक उल्लेखों से हुआ होगा।

सन्दर्भ सूचीः

1. ऋग्वेद, 10/81–82
2. रातपथ ब्राह्मण 8/2/1/10
3. तैत्तिरीय–संहिता 5/5/1–2
4. तैत्तिरीय–संहिता 5/85/43
5. ऋग्वेद 10/121/1
6. निरूक्त 7:17
7. ऋग्वेद 1/164/46
8. ऋग्वेद 1/114/5
9. ऋग्वेद 10/90/2
10. छान्दोग्य 3/14/1
11. निरूक्त 7/4
12. ऋग्वेद 10/129,1, 2
13. तैत्तिरीय–संहिता, 5/7/5, वृहदोरण्यकोपनिषद 5/5/1
14. विश्वकर्म–सुक्त 10/82/6, 2/35/16
15. ऋग्वेद 10/129/4

16. ऋग्वेद 10/190
17. ऋग्वेद 10/121/7
18. ऋग्वेद 1/73/2
19. ऋग्वेद 1/113/16, 16/4/30
20. अथर्ववेद 10/8/44
21. छान्दोग्योपनिषद 7/3/1
22. ऋग्वेद 6/52/4
23. ऋग्वेद 10/14/2
24. ऋग्वेद 10/113/8
25. ऋग्वेद 10/14/10
26. ऋग्वेद 10/14/11–12
27. ऋग्वेद 10/14/11–12
28. ऋग्वेद 10/165/5
29. ऋग्वेद 10/14/8
30. ऋग्वेद 10/16/5
31. ऋग्वेद 1/ /154–5–6
32. ऋग्वेद 7/35/4
33. ऋग्वेद 10/14/8
34. ऋग्वेद 1/117/4
35. ऋग्वेद 10/48/3
36. ऋग्वेद 10/58ए 10/60/10
37. ऋग्वेद 4/26/1
38. ऋग्वेद 7/33
39. ऋग्वेद 1/29/9
40. ऋग्वेद 2/28/6
41. ऋग्वेद 7/59/12
42. ऋग्वेद 10/48/5